पण्डित हरिदत्त शर्म्मा त्रिवेदी

की

योग्यता

अर्थात्

रहस्यभेद का भेद

भगवद्दत्त अध्यापक
दयानन्द महाविद्यालय, तथा अध्यक्ष
अनुसन्धान विभाग लाहौर।

प्रकाशक

आर्य्य–युवक–समाज, अमृतसर

प्रोप्राइटर–भैरवप्रसाद के प्रबन्ध से

विद्याप्रकाश प्रेस लाहौर में छपा।

आर्य्य सम्वत् १९७२९४९०२२

सम्वत्—१९७९ विक्रमी। सन् १९२२ ई०

॥ ओ३म् ॥

पण्डित हरिदत्त शर्म्मा त्रिवेदी

की

योग्यता

अर्थात्

* रहस्यभेद का भेद *

(१) पं० हरिदत्त पृ० १—"वेद वाम ग्रन्थ है।"

उत्तर—आज तक जितने ऋषि, मुनि, महर्षि आप्त-विद्वान् हो चुके हैं, उन में से किसी का भी यह मत नहीं, प्रत्युत वाम-मार्ग तो चार साढ़े चार सहस्र वर्ष से है। इतिहास पढ़ने वाले सब इस बात को जानते हैं। जिस रूढ अर्थ में अब वाममार्ग शब्द प्रयुक्त होता है, वह अर्थ महाभारत काल से पूर्व के आर्ष साहित्य में कहीं नहीं मिलता।

(२) पं० हरि० पृ० ३। "वाम ही वेद है क्योंकि वह वाम ही मांगता है।

"वामं वामं त आदुरे देवो ददात्वर्यमा।
वामं पूषा वामं भगो वामं देवः करूळती॥

"अर्थ—हे आदावाले यजमान अर्यमा देवता तुझे वाम ही दे याने वाम धन वाम पुत्र वाम सम्बन्धि [स्त्री] वाम बांधव वाम

आचार वाम मार्ग जो भी है वाम ही है। पूषा देवता जो कटे दान्तों वाला सो भी वाम ही वाम है॥"

उत्तर—जो मन्त्र पं० हरीदत्त जी ने उद्धृत किया है, वह ऋग्वेद ५।३०।२४॥ है। उस में (आदुरे) सम्बोधन पद है। पं० हरि० उसका अर्थ करता है "हे आदावाले" अहो! कैसा विलक्षण अर्थ है! न इसका सिर है न पैर! प्रतीत होता है पं० हरि०ने पं० राजाराम जी के नि रुक्त भाषा—भाष्य में से अपना जोड़ तोड़ करके अर्थ नकल किया है। पं० राजाराम जी का निरुक्त ६।३१॥ पर इस पद का यह अर्थ है—

"हे (पूजामें) आदर वाले (यजमान)" सो नकल करते समय "आदर वाले" के स्थान में "आदावाले" बन गया है। और "हे" के स्थान में "है" हो गया है। इसी से जान लेना चाहिये कि पं०हरि० की योग्यता वेद-विषय में इतनी ही है कि वह वेदार्थ को नकल करते हुए भी भूल करता है?

यहां वाममार्ग का कहीं चिन्ह भी नहीं है। मन्त्र में वाम शब्द का अर्थ प्रशंसा-योग्य, अच्छा, सेवनीय धन है। फिर न जाने पं०हरि० कहां से 'वाममार्ग' ले आया है? और भी पं०हरि० की योग्यता देखो कि 'सम्बन्धि' को इकार के चिन्ह से लिखता है। उसे इतना भी ज्ञान नहीं कि आर्य्य--भाषा में ईकारक चिन्ह से लिखना चाहिये।

ऋषि दयानन्द जी इसी मन्त्र का कितना सत्य और सुन्दर अर्थ अपने वेद-भाष्य में करते हैं। उसका संक्षेप हम नीचे देते हैं—

(आदुरे) हे शत्रु-नाशक-सज्जन (करूळती) जिसके कारीगरों

की कामना करनेवाला विद्यमान है वह (देवः) विजयप्रदाता (ते) तुझ (वामं वामम्) प्रशंसनीय पदार्थ जो (ददातु) देवे। वह करूळती (अर्यमा) न्यायाधीश (वामम्) प्राप्त होने योग्य पदार्थ देवे। वह करूळती (पूषा) पुष्टिकारक (वामम्) सेवनीय धनको देवे। वह करूळर्ता (भगः) ऐश्वर्य-युक्त (देवः) प्रकाशमान जन (वामम्) श्रेष्ठ ज्ञान को देवे। हे राजन् उन की तुम सेवा करो।

यह है इस मन्त्र का सत्यार्थ। और इस पर जो निरुक्त है, वह भी पं० हरि० ने नहीं समझा।

(३) पं० हरि० पृ० ३। "देवता वाम हे वेद में उन्हें वाम कहा है।

"अस्य वामस्य पलितस्य होतुस्तस्य भ्राता मध्यमो अस्त्यश्नः। तृतीयो भ्राता घृतपृष्ठो अस्यात्रापश्यं विश्पतिं सप्तपुत्रम्॥

ऋग्वेद। २। ३। १४। १।

'इस वाम पालन करने हारे बुलाने लायक सूर्य देवता का भाग लेने वाला (भाई) मध्य स्थान (बिजली वायु) इन्द्रादि देवता है तृतीय भाई घृत से स्पर्श करने हारा यज्ञादि में हवि लेने वाला अग्नि है इस के तीन विभागों में सूर्य सप्त ऋषि जगत का पालक है।"

उत्तर। हम पूर्व बता चुके हैं कि वेद में साम्प्रतिक मिथ्यार्थों में प्रचलित वाममार्ग का कहीं भी वर्णन नहीं है।

पं० हरिदत्त निरर्थक ही वाम का अर्थ वाममार्ग बना रहा है। अब हम ने यह बताना है कि पं० हरि० को देवता शब्द का अर्थ भी नहीं आता। यदि उसे अर्थ आता होता तो वह ऐसा कदापि न लिखता कि "देवता वाम है"।

देवता के अगले दश अर्थ आर्ष साहित्य में सर्वथा प्रचलित हैं। (१) माता (२) पिता (३) आचार्य (४) अतिथि (५) विद्वान् (६) दाता (७) प्रदीपक (८) द्योतक (९) द्युः स्थानि पदार्थ और (१०) इन्द्रियां। इन में से किसी का भी प्रचलित घृणित वाममार्ग से सम्बन्ध नहीं है। रहा मन्त्र सो उस का अर्थ यह है।

(वामस्य) शिल्पके गुणों से प्रशंसित (पलितस्य) वृद्धावस्था को प्राप्त [अस्य] इस वैज्ञानिक का [भ्राता समान] विद्युत प्रथम, (होतुः) देने वा हवन करने वाले (तस्य) उसके (भ्राता) भाई के समान (अश्नः,) (मध्यमः) पदार्थ-भक्षक पृथिवी आदि लोकों में प्रसिद्ध हुआ दूसरा और (घृतपृष्ठ) घृत वा जल जिस की पीठ पर, वह (अस्य, भ्राता) इस के भ्राता के समान (तृतीय) तीसरा (अस्ति) है। (अत्र) यहां (सप्तपुत्रम) सप्त तत्वों से प्रसिद्ध (विश्पतिम्) प्रजा पालक सूर्य को मैं (अपश्यम) देखूं। ऋ० १। १६४। १॥

मन्त्र का भावार्थ यह है कि वैज्ञानिक तीन प्रकार के भाई समान अग्नियों से काम लेता है। जिस प्रकार भाई भाई की रक्षा करके उसे आनन्द देता है। वैसे ही यह तीनों अग्नियां रक्षा की गई, वैज्ञानिकों को आनन्द देती हैं। वह तीन अग्नियां कौन सी हैं? मन्त्र कहता है (१) श्वेत और पीले रङ्ग वाला विद्युत (२) साधारण अग्नि और (३) सूर्यस्थ अग्नि।

अब कहो, कि यहां तुम्हारे मिथ्या वाममार्ग का कहां वर्णन है? पहले वाम के अर्थ समझते, पुनः मन्त्रार्थ करते तो अच्छा था।

पं० हरि०पृ०४—"वाम का अर्थ अच्छा ही है निरुक्त ४ । २६ अस्य वामस्य निरु० वामं वननीयं भवति । ६।३१।
वाम का अच्छा अर्थ है ।"

उत्तर—अब कहो भला कि इस वाम शब्द का तुम्हारे वाममार्ग से क्या सम्बन्ध है ? यह तो वैसी ही अज्ञान की बात है कि जैसी (ईशा) शब्द से किसी पादरी ने यजुर्वेद में 'ईसा' का नाम होना बताया था । वाम का अर्थ तो हम भी प्रशंसित आदि करते हैं, पर स्मरण रखो कि यह तुम्हारा भ्रष्टाचार वाला वाम [मार्ग] नहीं है ।

पं० हरि० पृ०४। "वाम अच्छा ही वेद है, क्योंकि परमात्मा ने अपने श्वास के साथ रखा है अस्य महतो भूतस्य...
.......................।"

उत्तर । इस बृहदारण्यक उपनिषद् ४ । ५ । ११ । के वचन का तो उपस्थित विषय से कोई सम्बन्ध ही नहीं है । इस के यहां देने से तो यही प्रतीत होता है कि जब पण्डित हरिदत्त को और कोई प्रमाण नहीं मिले, तो जैसे तैसे अपना लेख करने के लिये उन्हों ने यूंहीं इधर उधर से कुछ लिख दिया है । और पण्डित हरिदत्त जी को तो इस उपनिषद् वाक्य का अर्थ भी नहीं आता । न जाने लेख लिखते समय वह क्या कर रहे थे ? उनका अर्थ है—

"इस परमात्मा भूताधिनाथ का श्वास है जो ऋग्वेद, सामवेद अथर्ववेद है ।"

माना कि इस अर्थ में मूलमें आया हुआ यजुर्वेद भूल से रह गया है पर हमारा आक्षेप तो दूसरा ही है। उपनिषद् में महर्षि याज्ञवल्क्य अपनी पण्डिता स्त्री मैत्रेयी को अनेक दृष्टांतों से कई बातों का ज्ञान करा चुके हैं। उपस्थित वाक्यों में वे पुनः दृष्टांत देते हैं कि—"स यथाऽऽर्द्रैधाग्ने रभ्याहितस्य पृथग्धूमा विनिश्चरन्त्येवम्।" अर्थात् जिस प्रकार अग्नि पर गीला ईन्धन डालने से सहजतया उस में से धूम के बादल निकलते हैं, वैसे ही परमात्मा से सहजतया वेद प्रकट हुए हैं। जैसे मानव-शरीर से सहजतया श्वास निकलता है वैसे ही श्वासवत् परमात्मा से वेद निःसृत हुए हैं।

भला परमात्मा कोई देहधारी है, जिसका श्वास होगा। यहां तो उपनिषद् कहने वाले का भाव सहजस्वभाव से वेदों का परमात्मा से प्रकट होना, बताने का है। इसी लिये उसने गीले ईंधन का दृष्टान्त दिया है। अतः लोक-भाषा में वेदों को परमात्मा का श्वास कहना वैदिक वाङ्मय से अपरिचय प्रकट करना है।

पं० हरि० पृ० ४। वेद में यज्ञ ही बहुत हिसे में है जिसका सूचीपत्र सा अथर्व में मन्त्र ११ काण्ड १६ खण्ड। ऐन्द्राग्नं पावमानं इत्यादि।

उत्तर। यहां तो पं० हरि० की वेद विषय में योग्यता का पूरा पूरा परिचय मिल जाता है। जिस बात को वेदाभ्यासी एक बालक भी जानता है, पं० हरि० को उसका भी ज्ञान नहीं।

शोक ! महाशोक ! इसी योग्यता पर वेद पर लेख लिखने बैठे थे। पं. जी ! यह आप को किसने पढ़ाया था कि अथर्ववेद का विभाग खण्डों में भी है ? यह बात तो आज तक किसी अथर्ववेद सम्बन्धी आर्ष ग्रन्थ में नहीं आई कि अथर्ववेद में खण्ड भी हैं। यदि आप को अथर्ववेद के विभागों का ज्ञान न था, तो हमारी सम्पादित की हुई पञ्चपटलिका को लेकर ही पढ़ लेते पर होता कैसे ? ईश्वर ने तो आपका अभिमान तोड़ना था। अथर्ववेद में किसी विभाग का खण्ड नाम देना तो यही बताता है कि वेदविषय में आप अभी प्रारम्भिक विद्यार्थी जितना भी ज्ञान नहीं रखते।

यदि यज्ञ शब्द का वास्तविक अर्थ लिया जाय तो सारा वेद ही यज्ञ का प्रतिपादन करता है। क्योंकि मनुस्मृति में कहा है—दुदोह यज्ञसिद्ध्यर्थं और ऐसा ही याजुष ज्योतिष में भी कहा है—वेदाहि यज्ञार्थमभिप्रवृत्ता ॥ ३ ॥ परन्तु यदि सायण का वा आपका यज्ञ शब्द का संकुचित एक देशी अर्थ (देवपूजा) जैसा आप मानते हैं लिया जाय तो आप का कहना सर्वथा निर्मूल है। क्योंकि वेद सर्व सत्यविद्याओं का मूल है, और इसी से संसार का प्रत्येक शुभ कर्म जाना जाता है।

अथर्व के जो मन्त्र आप ने दिये हैं, उन से यही सिद्ध होता है कि उच्छिष्ट अर्थात् उत्+शिष्ट जो सारे विश्व से ऊपर का शेष है, उसी परमात्मा में सारे एन्द्राग्न, पात्रपान, महानाम्नी,

महाव्रत आदि यज्ञांग हैं। यहां तो मिथ्या वाममार्ग का गन्ध भी नहीं है।

पं० हरिदत्त पृ० ५ पर कोष्ठ में लिखता है—"(उच्छिष्ट-चांडालनी उच्छिष्ट गणेश उच्छिष्ट भैरवआदि)" यह पं० हरि० की कल्पनामात्र ही है। वेद तो क्या अन्य वैदिक ग्रन्थों में भी चांडालनी, सूण्ड वाले गणेश, और भैरव का उच्छिष्ट से कोई सम्बन्ध नहीं। पुनः न जाने ऐसे प्रमाणशून्य लेख से पं० हरि० का क्या प्रयोजन है?

पं० हरि० पृ०५। "......अमृते हितः अमृत भाव के लिये हित याने अमृत रूप सुरा के ग्रहण से (अपाम सोममृता अभूम श्रुत्यनुसार) देव भाव होता है परमात्मा उच्छिष्ट भैरव उच्छिष्ट गणेश उच्छिष्ट चाण्डालनी से ही पैदा हुए हैं ॥११॥"

उत्तर—यहां अथर्व० काण्ड ११ अनुवाक ४ मन्त्र ११ में आए हुए "ये यज्ञा अमृते हिताः" के अर्थ में पं० हरि० ने सर्वथा वेदविरुद्ध कल्पना की है। प्रथम तो अर्थ की भाषा ही बड़ी असङ्गत है। अस्तु, उसे जाने भी दें तो भी पता लगता है कि पण्डित जी को बड़ा भ्रम हुआ है।

मन्त्र का सत्यार्थ तो यही है कि चतुरात्र आदि यज्ञभाग और जो यज्ञ अमृत=प्राण ("अमृतं वै प्राणः" कौशीतकि ब्राह्मण ११। ४॥ तथा गोपथ ब्राह्मण २। १। ३।) में स्थित हैं अर्थात् यतियों और योगियों के अध्यात्म यज्ञ, वे भी उच्छिष्ट नाम परमात्मा से प्रकाशित हुए हैं।

पं० हरि० जी ने "अपाम सोममृता अभूम" का जो

प्रमाण बिना पते से दिया है वह भी असङ्गत ही है । यह बचन इन स्थलों में आया है—ऋ० ८ । ४८ । ३ ॥ तैत्तिरीय सं० २ । ३ । ५ । ४ ॥ आश्वलायन श्रौतसू० ५ । ६ । २६ ॥ कात्यायन श्रौतसू० १० । ६ । ७ ॥ मानवश्रौतसू० २ । ५ । ४ । ४८ ॥

इस का अर्थ यही है कि "हम ने ओषधियों के रस को पी लिया है और अमृत अर्थात् दीर्घायु हो गये हैं।" यहां 'अमृत' से दीर्घायु का अभिप्राय इसी लिये है कि अगले मन्त्र में वेद स्वयं कहता है—

प्र ण आयुर्जीवसे सोम तारीः ॥

ऋ० ८ । ४८ । ४ ॥

अर्थ—यह सोम=ओषधिरस हमारा आयु जीने के लिये बढ़ाता है । (व्यत्यय से अर्थ दिखाया गया है)। सोम का सुरा (शराब) अर्थ कहीं नहीं आया । और वैदिक वाङ्मय में "सुरा का भी सर्वत्र शराब अर्थ नहीं है । प० हरिदत्त के कहने से तो यही निकला कि सब शराबी देवभाव वाले हो जाते हैं । क्या कहना है ऐसी योग्यता का ?

यहां भैरव, गणेश आदि को उच्छिष्ट कहना वेदों के विषय से अपनी अज्ञता प्रकाशित करना है । हम ऊपर बता चुके हैं कि अथर्ववेद के इन प्रकरणों में उच्छिष्ट का अर्थ परमात्मा ही है ।

पं० हरि० पृ० ६ । यज्ञों में प्रायः सोम ज्यादह वर्ता जाता है १० हजार से ऊपर मन्त्र चारों वेदों की संहिताओं में आते हैं सोम एक लता है उस का रस शराब होता है जैसे ताड़ वृक्ष के फल को ताड़ि शराब कहते हैं

उत्तर। यज्ञों में प्रायः सोम वर्ता जाता है, यह सत्य है, पर सोमरस शराब है इस में कोई प्रमाण नहीं। देखो सोम के विषय में आयुर्वेद शास्त्र के प्रमाण। सुश्रुत चिकित्सास्थान, अध्याय २९ में सोम का सुविस्तृत वर्णन है। वहां पर यही कहा है कि

"सोमकंदं सुवर्णसूच्या विदार्य पयो गृह्णी-यात्सौवर्णे।"

"सोम-कन्द को सुवर्ण सूची (शलाका) से फाड़कर उसका रस सुवर्णपात्र में डाले।" इस रस के महा गुण लिखे हैं। वहां कहीं भी इसे शराबों में नहीं गिना। यही रस यज्ञों में पिया जाता है। जैसे अनार आदि का रसमात्र शराब नहीं, वैसे ही सोमरस भी शराब नहीं। और स्मृतियों में भी जहां २ सुरा=शराब का वर्णन आया है, वहां सोमरस शराबों में नहीं गिना। वहां तो शराब का निषेध ही है। देखो मनुस्मृति अध्याय ११—

सुरा वै मलमन्नानां पाप्मा च मलमुच्यते।
तस्माद्ब्राह्मणराजन्यौ वैश्यश्च न सुरां पिबेत् ॥९३॥
गौडी पैष्टी च माध्वी च विज्ञेया त्रिविधा सुरा।
यथैवैका तथा सर्वा न पातव्या द्विजोत्तमैः ॥९४॥

मनुस्मृति बहुत पुरानी है। उस में तीन ही शराबों का

वर्णन है, पर नई स्मृतियों के काल तक कई और प्रकार की शरावें बन चुकी थीं। अतएव उनमें और शरावों के नाम भी आते हैं। परन्तु वहां भी सोमरस का कहीं शराब में वर्णन नहीं किया। अतः सोमरस का शरावों में गिनना मिथ्या ही है।

फिर पं० हरिदत्त की योग्यता देखो। वह लिखते हैं—"१० हजार से ऊपर मन्त्र चारों वेदों की संहिताओं में आते हैं।" कैसा भ्रम है? चारों वेद संहिताओं में तो लग भग २० सहस्र मन्त्र आते हैं। जिस को इतना भी ज्ञान नहीं वह वेदों पर लिखे यही आश्चर्य है। और जो कहो कि बीस सहस्र संख्या भी १० हजार से ऊपर ही है इसी लिये "१० हजार से ऊपर" लिख दिया है, तोभी यह ठीक नहीं, क्योंकि ऐसा लिखने का प्रकार ही नहीं है।

पं० हरि०। "सोम के गुण मन्त्र ऋग्वेद ४ अष्टक० ७ अध्याय ३० वर्ग

"स्वादुष्किलायं मधुमां* उतायं तीव्रः* किलायं रसवां* उतोयम्। उतान्वस्य* पपिवां-समिन्द्रं न कश्चन सहत आहवेषु ॥ १॥

"यह सोम स्वादु होता है नशे की हालत में किसी बेवकूफ पुरुष के इस्तेमाल करने पर अटपट होने पर भी ज्यादह रुचि इस में पैदा होती है इन से सब से स्वाद इसी का है चूंकि यज्ञ

* मधुमाँ, तीव्रः, रसवाँ, न्वस्य ॥

में ज्यादह कोई चीज से भी शराब का इस्तेमाल हो सकना मुश्किल था इस से उस में दूध मिला कर पकाने से मीठापन किया जाता है इसी से वह कुछ मीठा है तीव्र यानि नशे के बढ़ाने में बहुत तेज है अथवा तीखी है और सार याने बल पैदा करने हारा है बल बुद्धि तेजोवर्द्धक ही मद्य होते हैं चरक ऋषि का भी यही मत है इस के पीने वाले इन्द्र के सामने कोई संसार भर में नहीं रह सकता”

उत्तर। हम पूर्व बता चुके हैं कि सोमरस शराब नहीं। अतः पं० हरिदत्त का बहुत सा लेख तो निरर्थक ही है। इस मन्त्र ऋग्वेद ६। ४७। १। में तो सोम के गुणों का कथन है। पं० हरिदत्त ने जो अपनी मिथ्या व्याख्या पूर्वोक्त अर्थ में जोड़ी है उसकी उस में गन्ध भी नहीं।

मन्त्रार्थ—(स्वादु) स्वादु (किल) ही (अयम्) यह [सोम है] (उत) और (मधुमान्) मीठा (अयम्) यह [सोम है] (तीव्रः) तेजस्वी और वेगयुक्त [तीव्र सोम की व्याख्या के लिये देखो—ताण्ड्य ब्राह्मण १८।५।४—११] (किल अयम्) ही, यह [सोम है] (उत) और (रसवान्) रस वाला (अयम्) यह [है] (उतो अस्य पपिवांसम् इन्द्रम्) इस के पीने वाले राजा आदि शूरवीर को (न, कः, चन) नहीं कोई भी (आहवेषु) संग्रामों मे (नु) शीघ्र (सहते) सहता।

पं० हरि० पृ० ७। “बलबुद्धि तेजोवर्द्धक ही सब मद्य होते हैं चरक ऋषि का भी यही मत है”

दूसरे, चरक तो विज्ञान का ग्रन्थ है। उस में प्रायः सब ही पदार्थों के गुण वर्णन किये गए हैं। नरमूत्र, गर्दभ मूत्र, स्त्री के घृत आदि का भी वहां वर्णन है। ये पदार्थ लाभकारी बताये गए हैं। रोग विशेषों में इन का प्रयोग भी हो सकता है, पर कर्तव्याकर्त्तव्य का अन्तिम निर्णय धर्म्मशास्त्र का विषय है। धर्म्मशास्त्र सुरा=शराब पीने का सर्वत्र निषेध करता है, ऐसा हम ऊपर मनु के प्रमाण से कह आए हैं। अब देखो इसी विषय पर उपनिषद् की श्रुति क्या कहती है—

स्तेनो हिरण्यस्य सुरां पिबाꣳश्च गुरोस्तल्पमावसन्ब्रह्महा च एते पतन्ति चत्वारः पञ्चमश्चाचरꣳस्तैरिति। छान्दोग्य उ० ५। १०। ६॥

अर्थ—सुवर्ण का चोर, शराबी, गुरु-भार्या-गामी, ब्रह्महत्यारा यह चार पतित होते हैं तथा इन से वर्तने वाला पांचवां भी [पतित होता है।] वेद का भी यही आदेश है।

सप्त मर्यादाः कवयस्ततक्षुः ऋ० १०।५।६॥

निरुक्तकार यास्कमुनि ६। २७॥ में इस का स्पष्ट रीति से अर्थ लिखते हैं—

"स्तेयं तल्पारोहणं ब्रह्महत्यां भ्रूणहत्यां सुरापाणं दुष्कृतस्य कर्मणः पुनः पुनः सेवां पातकेऽनृतोद्यमिति

अर्थात् सात मर्यादाएं ऋषियों ने विस्तृत की हैं। (१) चोरी (२) (गुरु वा अन्य) की भार्या में गमन (३) ब्रह्महत्या (४) गर्भहत्या (५) शराब पीना (६) बुराई का वार २ सेवन (७) पातक के विषय में मिथ्या कहना। जब वेद ने स्पष्ट शराब पीने का निषेध कर दिया तो अन्य आर्ष ग्रन्थ क्यों न करते? आर्य्य राज्य में मद्यप=शराबी का रहना ही बुरा समझा जाता था। महाराज अश्वपति इसीलिये ऋषियों को कहते हैं कि

"न मे स्तेनो जनपदे न कदर्य्यो न मद्यपः"

छा० उ० ५।११।५॥

मेरे राज्य में न कोई चोर, न कंजूस [अपने भृत्यों को वेतन ठीक न देने वाला] न शराबी है। जिन शराबियों के अपने राज्य में न होने पर आर्य्य राजा अभिमान करते थे उन्हीं की संख्या अब पण्डित हरिदत्त बढ़ाना चाहता है।

आगे जो पण्डित हरिदत्तजीने "हन्ताहं" प्रतीक वाला मन्त्र दिया है उस के अर्थ में भी उन्हें भ्रान्ति हुई है। वह तो इन्द्र=राजा के विषय का मन्त्र है और वहां 'सोम' का अर्थ शराब नहीं है। पं० हरि० पृ० ८ "सोमनशा है ऋ० अ०४ अ०७। व०३० मन्त्र

अप (यं) स्वादुरिह मदिष्ठ आसयस्येन्द्रो वृत्रहत्येममाद।
पुरूणि यश्च्यौत्ना शम्बरस्य विनवतिं नव च देह्योऽहन्। २

"यह सोम स्वाद मजेदार है पिया हुआ नशैला है खूब जोर नशा देता है जिस सोम को पीकर इन्द्र वृत्रासुर के मारने

के वक्त मस्त हुआ याने नशई हुआ————जो सोम का शराब निनावें असुर के मायामय देहों को और बहुत सी फौजों को मारता है ॥२॥"

उत्तर। हम बता चुके हैं कि सोम शराब नहीं अतः इस मन्त्र में भी सोम का शराब अर्थ करना व्यर्थ है। सोम तो उत्पन्न पदार्थ, ओषधि आदि को भी कहते हैं। इस मन्त्र का अर्थ यह है—

(अयं) यह ओषधि रस (स्वादुः) स्वाद-युक्त (इह) इस लोक में (मदिष्ठ) अतिशय आनन्ददायक (आस) होता है (यस्य) जिसके पान से (वृत्रहत्ये) शत्रुओं के नाश में (इन्द्र) सूर्यवत् प्रतापवान् राजा (ममाद) प्रसन्न होता है। और जैसे (इन्द्रः) सूर्य (शम्बरस्य) मेघ के (नव च नवतिम्) निनावें प्रकारों को (वि, हन्) नाश करता है वैसे राजा (देह्य) वृद्धि करने के योग्य हुआ, (पुरूणि) बहुत (च्यौत्ना) शत्रु सेनाओं को नाश करे।

भावार्थ यह है कि राजा ऐसे २ सोमादि ओषधि रस सेवन करे जिस से कि शत्रुओं के नाश में पूर्ण समर्थ हो।

शराबी तो भले प्रकार लड़ ही नहीं सकता। अभी गत योरुप के युद्ध में फ्रांस आदि देशों ने सेनाओं में शराब पान बन्द कर दिया था, क्योंकि शराबी सैनिक लड़ न सकते थे।

पृ॰ ८ वाले पहले मन्त्र में पं॰ हरि॰ पुनः अथर्व में खण्डविभाग का प्रमाण देकर अपनी बाललीला दर्शाता है। उस मन्त्र में 'सोमकामं' शब्द का अर्थ 'शराब की चाह रखने वाला नहीं हैं। पूर्वोक्त लेख से इस अर्थ का भी खण्डन जानो।

पिष्टपेषण से क्या लाभ ? 'मदाय' का अर्थ पं० हरि० सर्वत्र 'नशे के लिये' करता है, सो यह उस की भूल है। इन स्थलों में इस का अर्थ 'आनन्द के लिये' है।

पण्डित हरिदत्त "शराब बड़ी पवित्र है

"सोमः पवते यमाय क्रियते हविः

"———वह शराब बड़ा पवित्र है।"

उत्तर। यहां भी 'सोम' का अर्थ शराब नहीं है। प्रमाण पूर्व आ चुके हैं। अतः इस मन्त्रार्थ का भी खण्डन जानो।

पं० हरि० पृ० ६। चरक में भी सोम मद्य के नामों में गिना है।

उत्तर। समस्त वेदादि शास्त्रों के विरुद्ध होने से चरक का यह स्थल वेद में प्रामाणिक नहीं। जब उपनिषद् की श्रुति ने स्पष्ट शराब पान का निषेद्ध कर दिया, तो चरक का यहां कोई प्रमाण नहीं। हां पदार्थ का गुण-दोष वर्णन करना चिकित्सा शास्त्र के अधिकार में है।

"सुरा गङ्गा" वाला श्लोक अनार्ष ग्रन्थोक्त होने से हमें प्रमाण नहीं। यह तो किसी सुरामदान्ध का ही कहा हुआ है।

पं० हरि० पृ० ६। शराब में अन्न मिलाने से यज्ञों में वेद में सोत्रामणी यज्ञ में सुरा उसे कहा जाता है। २० का० १ ख० १ मन्त्र।

इन्द्र त्वा वृषभं वयं सुते सोमे हवामहे।
स पाहि मध्वो अन्धसः ॥

उत्तर। यह राजविषयक मन्त्र है। यहां भी सोम के अर्थ सुरा के नहीं, प्रत्युत उत्तम ओषधि के हैं। वृषभम् के अर्थ में पं० हरि० कहता है कि "नन्दी बैल बनने वाले (इन्द्र) को" कैसा ऊटपटांग अर्थ है ? भला इन्द्र जब राजा है, तो वह बैल कैसे बना ?

जहां इन्द्र परमात्मा का वाची है, वहां भी वह बैल नहीं बन सकता। मन्त्र का अर्थ यह है—हे ऐश्वर्यवान् राजन् ! तुझ बलिष्ठ को, हम मधुर अन्न आदि के, उत्पन्न ओषधिसमूह में पुकारें, वह आप हमारी रक्षा करें।

अर्थात् खेतियां और ओषधियां हरी भरी और उत्तम होने के लिये हम आप को ही पुकारें, क्योंकि विना स्वराज्य के ये काम ठीक नहीं हो सकते।

पं० जी जो यह लिखते हैं कि "सौत्रमाणी यज्ञ के लिए जरूर सुरा ही ली जाती है यह तीसरा काण्ड अथर्व यजुर्वेद का उन्नीसवां अध्याय सिर्फ इसी का है।" पृ० ६

यह भी असत्य ही है, देखो यजुर्वेद २० वें अध्याय का ऋषि दयानन्दकृत अर्थ। यदि उस पर कुछ आक्षेप हो तो कहो ॥

पं० हरि। "सुरा से मणि पत्थर आदि की देवता मूर्ति की पूजा भी लिखी है। अथर्व १० का० ६ ख० ॥

तस्मै घृतं सुरां मध्वन्नमन्नं क्षदामहे ।
स नः पितेव पुत्रेभ्यः श्रेयः श्रेयश्चिकित्सतु
भूयोभूयः श्वःश्वो देवेभ्यो मणिरेत्य ॥५॥

उस (बिलौर आदि) मणि देवता को घृत सुरा अन्न और भी खाने लायक सभ चीज देते हैं वो हमारे को, पुत्र को पिता की तरह कल्याण ही कल्याण करे देवताओं के पास से रोज बरोज आकर ॥ ५ ॥"

उत्तर—पं० हरिदत्त की योग्यता देखो कि उसे इस प्रकरण के 'मणिः' पद के अर्थ का भी ज्ञान नहीं है। वह इसी प्रकरण के दूसरे मन्त्र का अर्थ करते हुए 'मणिः' का अर्थ करता है "बिल्लौर आदि मणि की मूर्ति"। इस से पूर्व "फालाज्जातः" का अर्थ करता है 'फाले से काट कर बनाया' क्या बिल्लौर का मणि फाले से काट कर बनाया जाता है ? आश्चर्य है, पं० हरि० को इतना भी ज्ञान नहीं। और "फाले से काट कर बनाया" यह अर्थ भी अशुद्ध है। इस का स्पष्ट अर्थ है......फाले से उत्पन्न। अथर्व वेद के इस प्रकरण में वनस्पति वा ओषधि विशेषों की जड़ को, जब वह गोल काट ली जाती है, तब मणि कहा जाता है। वह मणि (जड़ विशेष) निश्चय

ही फाले मे उत्पन्न होता है। उसी के विषय में "तस्मै घृतं" ......वाला मन्त्र है। उस का यह अर्थ है—

(तस्मै) उस मणि के लिये (घृतम्) घृत (सुराम्) जल (मधु) सहत (अन्नम, अन्नम) अन्न पर अन्न (क्षदामहे) हम बांटते हैं। (पिता, इव) जैसे पिता (पुत्रेभ्यः) पुत्रों के लिये (श्रेयः श्रेयः) भलाई और भलाई (भूयः भूयः) अधिक से अधिक (श्वः, श्वः) कल और कल (चिकित्सतु) प्राप्त करता वा देता है, वैसे (स, मणिः) वह मणि (देवेभ्यः, एत्य) दिव्य जल और भूमियों से उत्पन्न हो कर (नः) हमारा कल्याण करता है॥

अब कहो, इस मन्त्र में कहां शराब का गन्ध है ? सुरा का अर्थ जल भी है। इस के लिए अर्थववेदीय निघण्टु का प्रमाण देखो। वहां सुरा जल के नामो में दिया है। इस मन्त्र का अभिप्राय यही है कि वनस्पति विशेषों की जड़ें अनेकों रोगों के दूर करने में वर्ती जावें, तथा उन का प्रयोग, घृत, जल, सहत आदि के साथ किया जाय।

पं० हरि० पृ० १० । देवताओं को मांस देने का खुलासा २१ अध्याय यजुर्वेद है खास मन्त्र एक नमूना दिया जाता है।

उत्तर। पं० हरि० यजुर्वेद २१। ४३ मन्त्र का प्रमाण देता है। उस के पहले पदों का अर्थ करता है "अश्विनी कुमार हविः बकरे की खायें"। मैं कहता हूं, भला यदि पं०

हरि० को वेद का अल्प भी ज्ञान होता तो वह ऐसा भद्दा अर्थ कभी न करता । अश्विद्वय के विषय में निरुक्त १२ । १ में कहा है 'जलाग्नी की शक्तियों को, द्यावापृथिवी को, अहोरात्र को, सूर्य चन्द्र को, पुण्य शील दो राजाओं को अश्विद्वय कहते हैं ।, ब्राह्मण ग्रन्थ दो उत्तम वैद्यों (काय चिकित्सक तथा शल्य चिकित्सक) को भी अश्विद्वय कहते हैं । कुछ और भी अर्थ इस पद के हैं, पर हमारा तात्पर्य इतने से ही चल जायगा । वेद मतानुसार इन में से किसी के लिये भी बकरे की हवि की आवश्यकता नहीं है । जड़ पदार्थों को तो उस से प्रयोजन भी नहीं, और मिथ्या पौराणिक, अधिष्ठातृ-देवता वाद का वेद में लेशमात्र भी नहीं । शेष रहे, वैद्य और राजा अथवा अध्यापक वा उपदेशक, सो वेद में उनके लिये भी किसी प्रकार के मांस-भक्षण का विधान नहीं है ।

ऋषि दयानन्द का ही इस मन्त्र का सत्यार्थ है । अन्य महीधर आदिकों ने वा स्वयं पं० हरि० ने तो सर्वथा अगड बगड लिखा है । पं० हरि० एक और छल करता है । ऋषि दयानन्द (छागस्य) पद को दूध आदि देने वाले पशुओं का उपलक्षण मान कर इस पद का " बकरा आदि पशुओं के " अर्थ करते हैं । पं० हरि० " आदि पशुओं के " पदों को उड़ा, केवल बकरा पद लिखकर छल करता है और पूछता है कि क्या बकरे से दूध निकलता है ? पं० हरि० का यह कहना निरर्थक

है। यहां छाग वा बकरा शब्द जाति–वाचक है। सो दूध बकरी आदि का ही होता है, अतः अभिप्राय बकरी आदि से ही है। इसको ऐसा न मानना वृथा पक्षपात का हठ करना है। ऐसा दुराग्रह सभ्यों के योग्य नहीं होता।

ब्राह्मण ग्रन्थों में तो स्पष्ट ही प्रक्षेप है। जो ऐसा नहीं मानता वह आर्ष सिद्धान्तों से अपरिचित है। शतपथ ब्राह्मण १३।५।२।४॥ में 'अध्रिगु परिशिष्ट' का वर्णन है। वहां कहा है :—

अश्वस्य शिश्नं महिष्युपस्थे निधत्ते।

भला यह अप्राकृतिक भ्रष्ट वर्णन कभी आर्ष हो सकता है

इसी प्रक्षेप का अन्ध अनुकरण करते हुए महीधर ने लिखा था—

"महिषी स्वयमेवाश्वशिश्नमाकृष्य स्वयोनौ स्थापयति।"

यह ब्राह्मण में आया वाक्य प० हरि० के विचारानुसार यदि प्रक्षिप्त नहीं तो पण्डित हरिदत्त ऐसे लोग ही इन बातों को स्वीकार कर सकते हैं अन्य कोई लज्जाशील सभ्य नहीं।

प० हरि० पृ० १२

यथा मांसं यथा सुरा यथाक्षा अधिदेवने।
यथा पुंसो वृषण्यत स्त्रियां निहन्यते मनः।
एवा ते अघ्न्ये मनोऽधि वत्से नि हन्यताम्॥

"हे पुत्रवधु तेरे पति में तेरा मन ऐसे लगे जैसे मांस शराब में लगता है जैसे बग्घी की सैर में जैसे कामातुर पुरुष का प्यारी स्त्री में मन लगता है ॥

उत्तर ! इस मन्त्र को जो सर्वथा ही मांस, शराब का निषेध बोधक है, पं० हरि० मांसभक्षण और सुरापान में लगाता है। भला ऐसी हठधर्मी पर क्या कहा जाय।

"यथा अक्षा अधिदेवने" का अर्थ पं० हरि० "जैसे बग्घी सैर में" करता है। यह मिथ्या मन घड़न्त अर्थ है। ऐसा अर्थ तीन काल में भी नहीं हो सकता ! इसका सत्यार्थ यह है कि जैसे पांसों के जुए के वस्त्र पर (होने से जुआरिये का मन उन में लगता है)। अब यह सर्वस्वीकृत वैदिक मत है कि जुआ खेलना वेदविरुद्ध पाप कर्म्म है। निरुक्त की साक्षी है कि ऋग्वेद के अक्षसूक्त में "द्यूतनिन्दा च कृषि प्रशंसा च"। द्यूत= जुआ खेलने की निन्दा है। इस निन्दायुक्त कर्म्म के सहचार दर्शाने से मांस शराब के प्रयोग का तो स्पष्ट ही खण्डन हो जाता है। मन्त्र का यथार्थ अर्थ यह है—

जैसे मांस, जैसे सुरा, जैसे जुए के वस्त्र पर पांसो में (खराब पुरुषों का मन लगता है) तथा जैसे कामातुर पुरुष का स्त्री में मन खूब लगता है वैसे हे स्त्री ! तेरा मन तेरे पुत्र में लगे।

"अघ्न्या" पद गो वाचक है। यहां पर गोसमान वर्त्तमान

स्त्री के लिये आया है। और "वत्स" पद बछड़े का वाची है अतः इस मन्त्र में उसका पुत्र अर्थ युक्त है। पं० हरी० इस का अर्थ पति करता है। यह सर्वथा अयुक्त है।

इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। उपमा केवल मन के लगने को दी गई है। पर जुए के सहचार से मांस और शराब के प्रयोग का निषेध कर दिया गया है।

यह ऋषि दयानन्द सरस्वती जी की ही कृपा है कि वेद का सत्यार्थ खुलने लगा है। वामियों ने जो आर्ष में प्रक्षेप किये थे, उन का भी ज्ञान लोगों को होने लगा है

"नामांसो मधुपर्को भवति" भी तो वामियों का ही प्रक्षे है। वेद विरुद्ध होने से इस का प्रमाण नहीं। वेद ही अध्ययन ने हमें बताया है कि ब्राह्मणादि ग्रन्थों में वामियों क्या हस्तक्षेप किये थे? हम बता चुके हैं कि मूल चार संहिताओं में सर्वत्र मांस, शराब का खण्डन ही है। अन्य भी सैंकड़ों मंत्र इस विषय के हैं, पर क्यों कि पूर्वपक्षी के जब प्रमाणभूत मन्त्र ही हमारे पक्ष के साधक बन गये तो अन्य मन्त्रों के देने से क्या लाभ?

आशा है वेदज्ञ लोग पं० हरि० सदृश वामियों के मिथ्यार्थ का खण्डन करेंगे। मिथ्या-विचारों का खण्डन करके वेद की पावन शिक्षा का सर्वत्र प्रचार करेंगे। अलमतीविस्तरेण वेदविद्या-भिषेषु॥